दिसम्बर 2023

दादावाणी

Retail Price ₹ 20

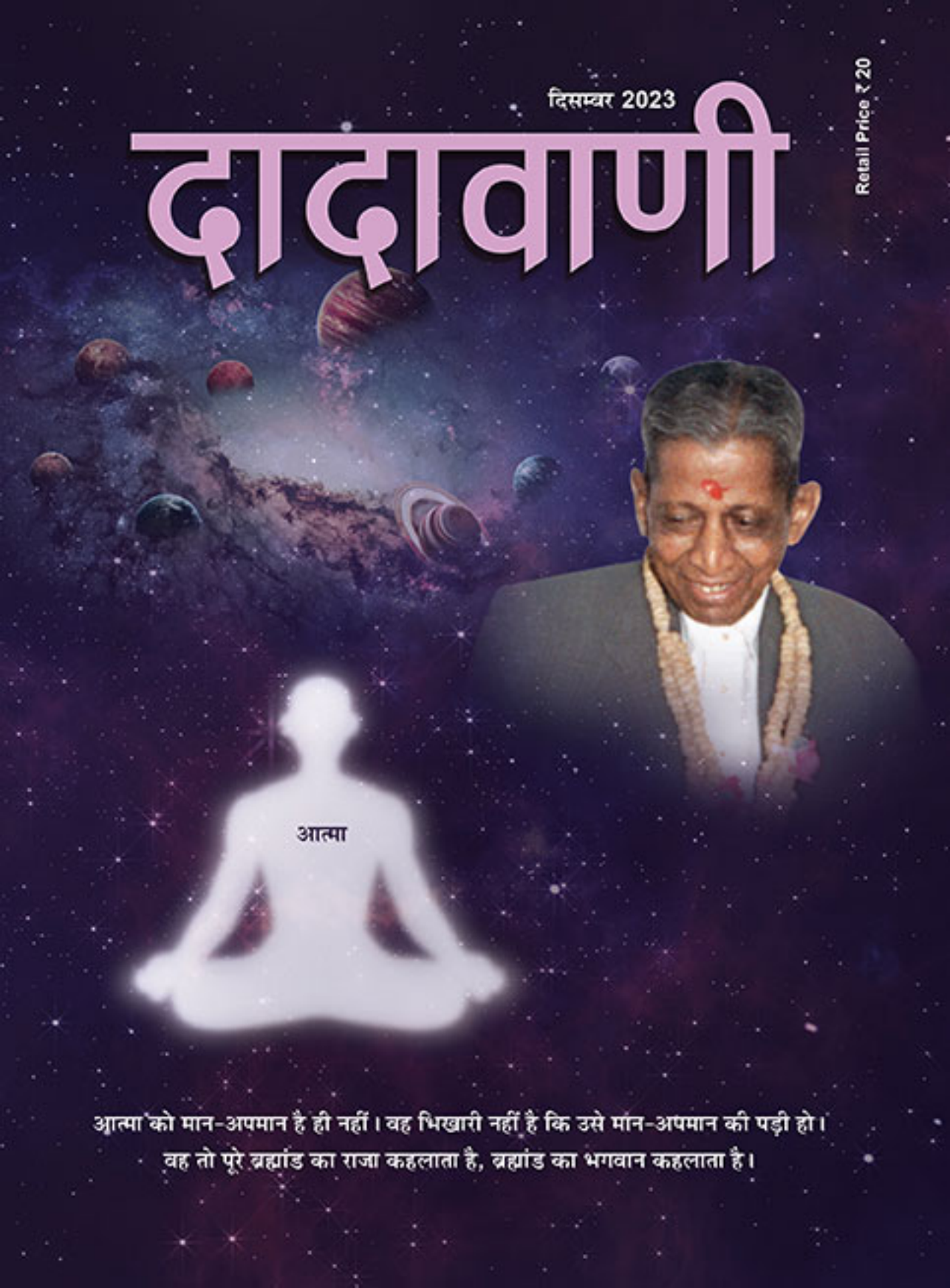

आत्मा को मान-अपमान है ही नहीं। वह भिखारी नहीं है कि उसे मान-अपमान की पड़ी हो। वह तो पूरे ब्रह्मांड का राजा कहलाता है, ब्रह्मांड का भगवान कहलाता है।

अडालज : नवरात्रि गरबा : ता 15 से 24 अक्तूबर 2023

भादरण : अविवाहित भाईओं का शिविर : ता. 20 से 24 अक्तूबर 2023

भादरण : अविवाहित बहनों का शिविर : ता. 26 से 30 अक्तूबर 2023

वर्ष : 19 अंक : 2
अखंड क्रमांक : 218
दिसम्बर 2023
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2023
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol, Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

अपमान के असरों से मुक्त रखें 'पाँच आज्ञा'

संपादकीय

पूरे समसरण मार्ग में आत्मा और प्रकृति दोनों अलग ही रहे हैं। आत्मा के अलावा सब प्रकृति में आ जाता है। अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, वे सभी प्रकृति के गुण कहे जाते हैं। ज्ञान के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसकी प्रतीति सौ प्रतिशत बैठ जाती है, परंतु प्रकृति अपनी भूमिका निभाए बिना नहीं रहती। प्रकृति में मान-अपमान का असर उत्पन्न होता है, उसमें 'मुझे हुआ', ऐसा डिस्चार्ज अहंकार तन्मयाकार होने से असर उत्पन्न होता है। उन असरों से मुक्त होने के लिए इस साल दादा भगवान की गुरुपूर्णिमा निमित्त से पूज्यश्री द्वारा दिया गया दादाश्री का विशेष ज्ञानसंदेश यही है कि मान-अपमान को अलग देखकर विज्ञान से उसका हल लाएँ।

प्रस्तुत अंक में, अपमान से असरमुक्त होने के लिए जुदापन की जागृति बढ़े, उसके लिए चाबियाँ मिलती हैं। बाहर महात्मा भले ही गालियाँ देते हों, परंतु अंदर खुद गलत होने के पछतावे में रहते हैं, राग-द्वेष रहित रहते हैं, वह उचित व्यवहार है। उचित व्यवहार से शुरूआत होती है और अंत में शुद्ध व्यवहार तक पहुँचते हैं! दादाश्री कहते हैं कि मैं गाली देने वाले को नहीं देखता, गाली देने वाले के भीतर 'कौन है', 'किसे देता है', उसे देखता हूँ। गाली देने वाला, वह पावर चेतन है, वह अपने हिसाब के अधीन है और खुद 'शुद्धात्मा' है। यह दृष्टि विकसित करें तो पूरा जगत् निर्दोष दिखाई देगा। सामने वाला गाली दें, तब खुद को तय करके रखना है कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* ही करना है'। मारपीट हुई वह व्यवहार नहीं है, डिस्चार्ज है। परंतु 'समभाव से *निकाल* करना है', ऐसा तय रखना, वह व्यवहार है। चंदू के नाम की डाक आई, कोई उल्टा-सीधा बोल गया, वह संयोग *पुद्गल* का है। उसमें 'मेरा नहीं है', ऐसा कहते ही अलग हो जाता है। असंयम को अलग देखना, वही संयम है।

जिसका अपमान करते हैं, वह तो मूर्त भाग है, मैं अमूर्त हूँ। मुझे पहचानेंगे ही कैसे? इस तरह आत्मगुणों की भजना से असरमुक्त रह सकते हैं। भीतर बहुत विचार घेर लें तब 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ', ऐसा बोलें तो विचारों का जोर टूट जाता है। जो किंचित्मात्र किसी से दुःखी नहीं हो सकता, ऐसा खुद का अव्याबाध स्वरूप *लक्ष* में रहेगा तो अपमान का असर नहीं होगा। खुद अनंत सुख का कंद है, उसका कोई अपमान करे फिर भी उसे सुख ही लगेगा।

ज्ञान के बाद अपमान पचाना आ जाए तो ज्ञानी हो जाएँगे! कोई हमारा अपमान करे तब कितनी समता रही, वह हमारे ज्ञान का थर्मामीटर है। उस थर्मामीटर द्वारा पता चल जाता है कि हमने कितनी आज्ञा पालन की? पाँच आज्ञा और स्वरूप की रमणता के आराधन से हम सभी महात्मा मान-अपमान कषाय को समाप्त करने का पुरुषार्थ करके, असरमुक्त दशा प्राप्त करके, खुद के सनातन सुख का अनुभव कर सकें, ऐसी हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

अपमान के असरों से मुक्त रखें 'पाँच आज्ञा'

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

अहंकार-कषाय, वह भी पुद्गल

प्रश्नकर्ता : ये जो कषाय हैं, वे *पुद्गल* के अधीन ही हैं न, *पुद्गल* के माध्यम से ही परिणाम आता है न, उनका?

दादाश्री : वह खुद ही *पुद्गल* माना जाता है वह *पुद्गल* का ही एक भाग है।

प्रश्नकर्ता : क्रोध, *पुद्गल* का स्वभाव है या प्रकृति का?

दादाश्री : प्रकृति, वह *पुद्गल* ही है, यह सब। प्रकृति में चेतन-वेतन नाम मात्र को भी नहीं है, वह सारा *पुद्गल* ही है।

प्रश्नकर्ता : तो क्रोध, मान, माया और लोभ, वे *पुद्गल* में हैं?

दादाश्री : वह सब *पुद्गल* ही है।

प्रश्नकर्ता : ये क्रोध-मान-माया-लोभ उनके अपने जो परिणाम बताते हैं, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : वह सब अज्ञानता है तब तक है। क्रोध-मान-माया-लोभ, जो कि लघु-गुरु स्वभाव वाले हैं, वह *पुद्गल* का है। अगुरु-लघु स्वभाव वाला सब आत्मा का है। कोई बिना बोले गुस्सा हो जाए तो पता चलता है या नहीं चलता? चलता ही है।

प्रश्नकर्ता : पज़ल करने वाले को *पुद्गल* ही कहा है, उसमें अज्ञान है, ऐसा नहीं कहा है।

दादाश्री : वही *पुद्गल* है। *पुद्गल* ही अज्ञान है न! क्रोध-मान-माया-लोभ सब उदयास्त (उदय व अस्त) होते हैं, वह अपना नहीं है। क्रोध-मान-माया-लोभ और अहंकार सबकुछ *पुद्गल* कहलाता है। वह मिश्रचेतन भी *पुद्गल* में ही आता है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार जो भोगता है, वह *पुद्गल* के माध्यम से भोगता है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उसका तो अन्य कोई रास्ता ही नहीं है न! अहंकार भी *पुद्गल* है। आत्मा के अलावा बाकी का सब *पुद्गल* ही है, फिर उसे प्रकृति कहो या *पुद्गल* कहो। शुद्धात्मा और *पुद्गल* दो ही हैं ये।

प्रकृति को अलग देखो, तो आप अलग

प्रश्नकर्ता : हमें इतने साल हो गए ज्ञान लिए, फिर भी अभी तक प्रकृति अपनी भूमिका निभाए (काम किए) बगैर क्यों नहीं रहती?

दादाश्री : यह प्रकृति तो भूमिका निभाएगी ही न! प्रकृति यानी क्या, वह नहीं समझना चाहिए? प्रकृति अर्थात् अनटाइमली बम। कब फूटें, वह कहा नहीं जा सकता! फूटेगी तो अवश्य। वह खुद के काबू में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, अभी भी संयम क्यों नहीं आता?

दादाश्री : लेकिन वह आपके काबू में नहीं है। फिर भी ऐसा बोलने की ज़रूरत नहीं है। उसे कंट्रोल करने जाओगे तो मूर्ख बनोगे। उसे कंट्रोल

नहीं करोगे तो और ज़्यादा मूर्ख बनोगे। अर्थात् बात को समझने की ज़रूरत है हमें। समझेंगे तभी बात बनेगी। समझना अर्थात् क्या कि प्रकृति को जो होता रहता है, उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : हमें कोई कुछ अपमानजनक बात कह दे, तब इतने सालों बाद भी, हमें संयम नहीं रहता तो इसका अर्थ ही क्या है?

दादाश्री : उसमें तो प्रकृति ज़ोर से आवाज़ भी कर सकती है। दस सालों से वह धीरे से बोल रही थी और किसी दिन आवाज़ तेज़ हो जाती है क्योंकि अंदर बारूद ज़्यादा भर गया हो, इसलिए हमें कोई झंझट नहीं करनी है। उसे हम जुदा 'देख' सकते हैं या नहीं, इतना ही समझ लेने की ज़रूरत रहती है। प्रकृति को जुदा देखें तो परेशानी नहीं है। देखा अर्थात् आप अलग हो।

हमें कोई डाँटे, उस समय क्या हम अलग नहीं रहते होंगे? मान दे उस घड़ी भी अलग रहते हैं और डाँटे उस घड़ी भी अलग रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम अलग नहीं रह सकते हैं उस घड़ी। हमें कोई डाँटें तो सामने जवाब दे देते हैं।

दादाश्री : लेकिन वहाँ पर भी आपको यह 'देखना' है और उसके बाद आपका ध्यान ऐसा होता जाएगा, धीरे-धीरे। इस मार्ग पर हमारे साथ भी ऐसा होता था लेकिन अब यह होने लगा है। अब आपके साथ भी ऐसा हो रहा है, तो उसमें से अब धीरे-धीरे यह भी होगा। यानी कि मार्ग पर आ रहे हो।

प्रश्नकर्ता : तो इस जन्म में भी ऐसा ही रहने वाला है?

दादाश्री : शायद बाद के जीवन में कुछ कम भी हो जाए। यह तो अलग-अलग रहता है, किसका कैसा माल पड़ा है (उस पर आधारित है)! *पुद्गल* अर्थात् *पूरण* किया हुआ *गलन* होता है। नया *पूरण* नहीं होता है लेकिन जो *गलन* हो रहा है, उसे देखा करो।

मान-अपमान का असर भोगता है अहंकार

प्रश्नकर्ता : यह मान-अपमान की जो बात हुई, यह मान-अपमान का पता किसे चलता है? वह देह को नहीं चलता, वह तो आत्मा को ही चलता है न?

दादाश्री : आत्मा को मान-अपमान है ही नहीं। वह भिखारी नहीं है कि उसे मान-अपमान की पड़ी हो। वह तो पूरे ब्रह्मांड का राजा कहलाता है, ब्रह्मांड का भगवान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर जो पहुँचता है, उससे तो आत्मा को चोट लगती है न?

दादाश्री : नहीं, आत्मा को नहीं लगता। आत्मा को स्पर्श नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : देह तो अनात्मा है। देह पर क्या असर होगा मान-अपमान का?

दादाश्री : इस बर्फ पर धधकती अग्नि (अंगारा) रख दें तो क्या होगा? अग्नि रख देंगे तो बर्फ जलेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : जलेगा नहीं, लेकिन बर्फ पिघल जाएगा।

दादाश्री : वह तो उसका खुद का स्वभाव ठंडा है, इसलिए बल्कि अंगारे को ठंडा कर देता है। इसी प्रकार आत्मा को दुःख स्पर्श नहीं करता। इस देह को भी दुःख महसूस नहीं होता और आत्मा को भी महसूस नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो किसे होता है?

दादाश्री : यह भोगता कौन है? अहंकार।

अहंकार भोगता है और अहंकार को ही होता है। आत्मा को कुछ स्पर्श नहीं करता। आत्मा तो अपनी खुद की चीज़ के अलावा किसी और चीज़ को स्वीकार ही नहीं करता। यह अहंकार इसे भोगता है, और उसी को महसूस होता है।

कुछ भी न छूए, ऐसा आत्मा है

प्रश्नकर्ता : कई बार कोई आक्षेप लगाए तब अहंकार आहत हो जाता है, अहंकार को ठेस लगती है, तब सामने वाले से खुद को ठेस लगती है, उसकी बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : उसे तो लेट गो (जाने देना) कर लेना। यदि अपने अहंकार को ठेस लगे तब तो बल्कि अच्छा है। आप से उसके अहंकार को ठेस लगे तो उसकी ज़िम्मेदारी आप पर है। लेकिन यह तो बल्कि अच्छा है, अंदर का सब से बड़ा तूफान खत्म हो गया!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर अहंकार जलता रहता है, उसका क्या?

दादाश्री : जितना जलेगा उतना कम होता जाएगा। हमें यह सब कम ही करना है न! लकड़ी जला देनी है, जितनी जल जाएगी, उतनी कम। बल्कि और भी ज़्यादा जले तो अच्छा है। उसे 'देखते' रहना है। (अंत में) जलाना ही है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर अंदर खुद थोड़ा-बहुत जलने लगता है। जब अहंकार जल रहा होता है, तब उसकी आंच खुद को भी लगती है न, दादा?

दादाश्री : खुद को वह जो आंच लगती है, उसे भी जानना है न कि भाई, इतना बड़ा विस्फोट हुआ कि उसकी आंच लगी। आंच लगे तो आप हट जाना वहाँ से। क्योंकि आत्मा ऐसा है कि उसे आंच छूती ही नहीं। वह मन में मानता है कि, 'मुझे आंच लगी,' वह तो गलत है। आँच लगी, ऐसा दिखाई ज़रूर देता है लेकिन उसे स्पर्श नहीं करती, उसे दुःख नहीं देती। उसे ऐसा भी लगता है कि 'मुझे जला डाला'। लेकिन आत्मा ऐसा है कि कुछ भी नहीं छूता, सौ प्रतिशत गारन्टी है उसकी। इतना अच्छा आत्मा दिया है फिर ऐसी सारी बात ही कहाँ रही? आप जितना नुकसान उठाएँगे उतना नुकसान होगा।

राग-द्वेष रहित उचित व्यवहार

प्रश्नकर्ता : तो दादा, हम महात्माओं के लिए तो यही चीज़ है न, कि आपने हमें आत्मा दिया है। अब हमारा व्यवहार शुद्ध हो जाना चाहिए न?

दादाश्री : हो गया है न! लेकिन उचित से लेकर शुद्ध व्यवहार तक हो गया है।

प्रश्नकर्ता : उन दोनों की, 'उचित' और 'शुद्ध' की स्पष्टता कीजिए न।

दादाश्री : उचित से शुरुआत होती है। उचित अर्थात् 'जो गलती निकालने जैसा न हो।' कोई आमने-सामने गालियाँ दे रहा हो तब भी वह व्यवहार उचित है। उससे आगे फिर शुद्ध व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैसे? आपने उचित व्यवहार की परिभाषा बताई कि, 'जिसमें कोई गलती न निकाल सके' और दूसरी तरफ ऐसा कहा है कि उचित व्यवहार अर्थात् अगर गालियाँ दे रहा हो तब भी वह उचित व्यवहार कहा जाएगा।

दादाश्री : आप यहाँ किसी पर चिढ़ जाओ तब भी अपने यहाँ सब समझते हैं कि, '*निकाल* कर रहे होंगे, समभाव से...।' ऐसा ही कहते हैं न?

कोई भी नोट डाउन नहीं करता, नहीं? आपने नोट डाउन किया है ऐसा किसी का कुछ?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नोट डाउन नहीं होता।

दादाश्री : उसका क्या कारण है? क्यों उचित व्यवहार है वह? वह राग-द्वेष रहित है, राग-द्वेष नहीं हैं। राग-द्वेष रहित व्यवहार, फिर चाहे मारपीट कर रहे हों, हथौड़े मार रहा हो लेकिन वह उचित व्यवहार कहा जाता है। उसमें ज़रा भी तिरस्कार नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : अब वैसा व्यवहार रखना और शुद्ध व्यवहार रखना, वे कुछ अलग हैं?

दादाश्री : हाँ। शुद्ध व्यवहार तो वह शुद्ध व्यवहार ही रहा। लेकिन जब तक वह शुद्ध दिखाई नहीं देता तब तक वह उचित से लेकर शुद्ध तक का उसका भेद है। है तो शुद्ध ही, लेकिन उचित शुद्ध से लेकर शुद्ध शुद्ध तक का भेद है।

ऐसा है न, अपना यह शुद्ध व्यवहार ही कहलाता है। लेकिन जब तक शुद्ध व्यवहार नहीं दिखाई देता तब तक उसे उचित व्यवहार कहा जाएगा और जब दिखने लगे तब शुद्ध कहा जाएगा। उचित व्यवहार बाहर के लोगों में नहीं होता। बाहर तो जो उसे चिढ़ना हो तो चिढ़ता है और रोना हो तो रोता है और हँसना हो तो हँसता भी है।

अत: अपना व्यवहार, उचित व्यवहार से शुरु होता है और अंत में शुद्ध व्यवहार तक पहुँचता है! शुद्ध निश्चय और शुद्ध व्यवहार। अब जितना व्यवहार शुद्ध हो गया उतना शुद्ध निश्चय आपके पास प्रकट हो गया। संपूर्ण शुद्ध व्यवहार हो जाएगा तो शुद्ध निश्चय, संपूर्ण, अर्थात् पूर्णाहुति!

अब अपना यह उचित व्यवहार है लेकिन लोगों को कैसे समझ में आ सकता है? अपना व्यवहार मोक्ष के लिए उचित व्यवहार है, लेकिन लोगों को अनुचित लगता है।

अब शुद्ध व्यवहार यानी क्या? ये भाई मेरा अपमान करते हैं, वह उनका व्यवहार अशुद्ध है। लेकिन मुझे उन्हें शुद्धात्मा भाव से देखकर और उनके साथ शुद्ध व्यवहार रखना है। मेरा व्यवहार नहीं बिगड़ने देना है। क्योंकि वह जो गालियाँ देता है, वह जो कुछ भी ऐसा अपमान करता है, वह खुद नहीं करता, ये मेरे कर्म के उदय उसके माध्यम से निकल रहे हैं। इसलिए ही इज़ नॉट रिस्पॉसिबल एट ऑल (वह उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं है)। इतना आप समझ गए न? अब, वह शुद्धात्मा में (जागृति में) हो या न भी हो, लेकिन आपको उसे शुद्धात्मा ही देखना चाहिए और निर्दोष देखना चाहिए, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। दोषित को भी निर्दोष देखना आ गया। पूरा जगत् जिसे दोषित कहता है, उसे आप निर्दोष देखते हो, इस प्रकार से, खुद शुद्ध है और सामने वाला शुद्ध ही है, जिसकी ऐसी दृष्टि है, वह शुद्ध व्यवहार है!

इन पाँच आज्ञाओं का पालन करें न, तो वह बिल्कुल शुद्ध व्यवहार है। पाँच आज्ञा इसलिए ही हैं। यह उचित व्यवहार है न, वह शुद्धता को पकड़े इसलिए है। और इन पाँच आज्ञाओं का पालन नहीं हो पाता तो वह उचित व्यवहार में जाता है।

निकलता माल, वह नहीं है व्यवहार

यह पुराना, पड़ा हुआ माल निकलता है। उसी को अगर व्यवहार कहें, लेकिन यह पुराना माल तो फिर बदबू मारता है। इसलिए भरा हुआ माल, वह व्यवहार नहीं है। व्यवहार कौन सा है? तो कहते हैं कि, 'अभी 'वह' किसमें है', वह व्यवहार है। अभी ये भाई हैं, वे किसी को डाँट रहे हों, तो मैं उसे डाँटूँगा नहीं। मैं जानता हूँ कि वह खुद उसे डाँटने में नहीं है। क्योंकि डाँटने

के बाद खुद को पछतावा होता है कि यह गलत हो गया है, ऐसा नहीं होना चाहिए।

अब यह बात उन्हें गहराई से समझ में नहीं आती है न? इसकी कितनी अधिक गहनता है, वह लोगों को समझ में नहीं आता। ऐसे यों जो दिखाई देता है, वह तो ऊपर, ऊपर से देखते हैं न? सुपरफ्लुअस देखते हैं न वे तो। अब यह गहराई अर्थात् वह उनको गालियाँ दे रहा हो फिर भी मैं जानता हूँ कि वह उसमें नहीं है। वह खुद गालियाँ नहीं दे रहा है अभी। खुद पछतावा कर रहा है इसलिए व्यवहार उसका ऊँचा है। लेकिन यह तो जो पिछला भरा हुआ माल है, वह निकल जाता है। उसे निकालना तो पड़ेगा ही न?

प्रश्नकर्ता : आपने सुंदर उदाहरण दिया है। तानसा (एक सरोवर) का पानी जो है, वहाँ से बंद कर दिया, वह कॉक। फिर भी पाइप में भरा हुआ पानी निकल रहा है।

दादाश्री : इन लोगों का इनलेट (पानी आने) वाला कॉक बंद हो गया है, लेकिन निकासी वाला कॉक तो खुला है न! अब जो पानी निकल रहा है, उसमें अगर थोड़ा डामर पड़ा हुआ होगा तो डामर वाला निकलेगा। उसके लिए क्या अब उन्हें डाँटना चाहिए? वह तो भाई, जो पहले भरा था वही अब निकल रहा है, उसमें तू क्यों डाँट रहा है? खाली तो करना पड़ेगा न?

अत: इन सभी का उचित व्यवहार है। क्योंकि आपको गुस्सा होते ही अंदर क्या लगता है? 'यह नहीं होना चाहिए', ऐसा होता है न? एक तरफ वह गुस्सा करता है और दूसरी तरफ वह खुद अंदर पछतावा करता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' वह जो अभिप्राय बदल गया, वह आपका व्यवहार है। 'ऐसा नहीं होना चाहिए', उसे कहते हैं उचित व्यवहार। जबकि लोग बाहर का देखते हैं। इसलिए मुझसे कहते हैं, आपके महात्माओं का बाहर का व्यवहार कुछ बदलता नहीं है। तब मैंने कहा, 'वह नहीं बदलना है हमें।' तब कहते हैं, 'ऐसा कैसे चल सकता है?' तब मैंने कहा, 'वह सब तो हमारे यहाँ चलता है, भाई।' क्योंकि उसे अगर समझाने बैठूँ तो नहीं समझेगा और मेरा टाइम बिगड़ेगा चार घंटे का।

असंयम को देखना, वही संयम

अपने इस वीतराग विज्ञान में, अपना अक्रम विज्ञान संपूर्ण व्यवहार-निश्चय वाला मार्ग है। क्योंकि व्यवहार बिल्कुल ही संयमपूर्वक होता है। व्यवहार कैसा होता है? गालियाँ देने वाला चंदूभाई है और खुद मना करता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह आपका संयम है और आपके संयम की कीमत है, चंदूभाई के संयम की कीमत नहीं है। यानी कि यह व्यवहार संयमपूर्वक है इसलिए इस व्यवहार को हम शुद्ध व्यवहार कहते हैं और शुद्ध व्यवहार के आधार पर कम्प्लीट शुद्ध निश्चय खड़ा है। शुद्ध व्यवहार है, वहाँ आत्मा है। जहाँ व्यवहार संयमपूर्वक नहीं है वहाँ ऐसा नहीं माना जा सकता कि आत्मा प्राप्त हो सकेगा। व्यवहार संयमपूर्वक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी महात्माओं के समझने में ज़रा गड़बड़ हो जाती है।

दादाश्री : नहीं। यह ज्ञान देने के बाद में आपका व्यवहार शुद्ध व्यवहार ही है लेकिन वह मानता है उल्टा। क्रिया हिंसक दिखाई देती है लेकिन व्यवहार शुद्ध ही है।

कोई व्यक्ति आकर चंदूभाई से कहे कि, 'आप इस बच्चे को पढ़ाते हो न, वह बहुत ही खराब तरीके से पढ़ाते हो।' इस तरह से वह ब्लेम (आरोप) करता रहे आपके सामने तो उस

समय चंदूभाई फिर उसे ब्लेम करते हैं। और इसे आप जानो कि यह चंदूभाई असंयमी हो गए। वह, जिसे असंयम हुआ, ऐसा जो जानता है, वह जानने वाला संयमी है। अतः, यह जागृति है या नहीं, ऐसा पता चलता है या नहीं चलता? गाली दे तो अपनी जागृति भीतर पता चल जाती है। या फिर अच्छे कपड़े पहनकर शादी में जा रहे हों और कोई ऊपर से थूक दे तो उसे दोषित नहीं देखकर, अंदर से जागृति उत्पन्न हो जाती है। चंदूभाई शायद दोषित देख भी लें लेकिन तब भी भीतर में यह होता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। वह जागृति है और वही संयम है। असंयम को देखना, वही संयम है।

प्रश्नकर्ता : दादा का ज्ञान मिलने के बाद अंदर से संयम परिणाम उत्पन्न होते हैं।

दादाश्री : संयम ही है। खुद अलग ही है। अतः अंदर संयम परिणाम के कारण वह शुद्ध व्यवहार ही कहलाता है। यह परिणाम, उस पर संयम रहने से वह शुद्ध ही कहलाता है। वह तो व्यवहार में यों आर-पार निकल जाना चाहिए। अपना ज्ञान व्यवहार को आर-पार कर दे, ऐसा है। यह अलौकिक विज्ञान है! विज्ञान को यदि जान ले तो कल्याण हो जाएगा पूरे जगत् का!

गाली देने वालों में भी दिखाई दें शुद्धात्मा

हमारा व्यवहार कैसा है?

प्रश्नकर्ता : टॉप, सर्वोच्च।

दादाश्री : यानी ऐसा होना चाहिए। यानी इस जन्म में इन्होंने (महात्मा ने) खुद ने समझा है। फिर भी, व्यवहार उच्च है वह फिट हो गया है, तो अगले जन्म में वैसा हो जाएगा।

और दूसरे लोग जो हिसाब चुकाते हैं, वह अपना हिसाब है। कोई माला पहनाने आता है, पैर छूता है, वह भी अपना हिसाब है और फिर कोई मारे वह भी अपना हिसाब। आपको कोई गाली दे, उस समय उसमें आपको शुद्धात्मा ही दिखने चाहिए। व्यवहार नहीं दिखना चाहिए। व्यवहार आपका हिसाब है। आपका भुगतने का जो हिसाब था, वह खत्म हो रहा है। इसीलिए वह अपना ऐसा व्यवहार कर रहा है लेकिन वह खुद तो शुद्ध ही है। इसलिए उसके प्रति शुद्धता की दृष्टि रहे तो वह शुद्ध निश्चय कहा जाएगा। आप शुद्ध हो और जगत् शुद्ध है। जितना शुद्ध उपयोग, उसी को कहते हैं, शुद्ध निश्चय। वही शुद्ध आत्मरमणता और तभी शुद्ध व्यवहार रहेगा। जितना शुद्ध निश्चय होगा उतनी ही व्यवहार शुद्धता रहेगी। निश्चय यदि एक तरफ कच्चा है, अशुद्ध है तो उतनी व्यवहार अशुद्धता।

कोई दोषित नहीं, वही शुद्ध उपयोग

शुद्धात्मा हो जाने से ही कहीं काम खत्म नहीं हो जाता। शुद्धात्मा किसे कहते हैं, कि सामने वाला गालियाँ दें और हमें यदि अशुद्धि हो जाए तो वह शुद्धात्मा नहीं कहलाता। उस समय उसका शुद्धात्मा दिखाई देना चाहिए। गाली दे रहा है, वह अपना उदयकर्म दे रहा है। वह बाजा बज रहा है, टेपरिकॉर्ड बज रहा है, लेकिन उदयकर्म तो अपना ही है न! और सामने वाला शुद्ध ही है इसलिए खुद सामने वाले को शुद्ध देखता है। मैं गाली देने वाले को नहीं देखता। गाली देने वाले के भीतर 'कौन है', उसे मैं देखता हूँ। अतत्त्व को मैं नहीं देखता। मुझे अतत्त्व से क्या काम है? गधा भी अतत्त्व ही है और यह भी अतत्त्व है। मैं तो उनमें तत्त्व को ढूँढ़ता हूँ।

हमारी दृष्टि से देखने जाओगे तो आपको, हमारी जैसी दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी कि यह

पूरा जगत् निर्दोष है। दोषित दिखाई देता है, वही भ्रांति है। आपको गालियाँ देने वाला, आपको दोषित दिखाई देता है, वह भ्रांति है। क्योंकि गालियाँ देने वाला तो पावर चेतन है। सामने वाले का पावर चेतन आपके हिसाब के अधीन है। वे हिसाब चुकाने पड़ेंगे। हिसाब चुक जाने के बाद कुछ भी नहीं रहता। और दरअसल चेतन तो शुद्धात्मा है। यानी कि वह गालियाँ दे फिर भी आपको तो उसे शुद्धात्मा ही देखना होगा। कोई भी दोषित नहीं दिखाई दे तो उसे कहेंगे शुद्ध उपयोग। कोई भी दोषित नहीं है, जगत् निर्दोष ही है।

जीवमात्र को शुद्ध देखो

खुद को शुद्ध देखना, उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग! जीवमात्र को शुद्ध देखना, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है।

अब कभी कोई व्यक्ति इतनी बड़ी फूलों की माला पहना जाए, तो उस समय आपको उसके प्रति भाव होता है कि बहुत अच्छा व्यक्ति था। और फिर एक व्यक्ति आपसे वह माला लेकर तोड़कर फेंक दे तो उसके प्रति अभाव हो जाएगा, वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। एक पहनाए, एक तोड़ दे। एक सम्मान करे, एक गालियाँ दे लेकिन उसे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। जब तक फर्क पड़ता है तब तक, अभी भी जितना होना चाहिए उतना शुद्ध उपयोग नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : फर्क पड़ता ही है, दादा। असर हो जाता है।

दादाश्री : वह फर्क पड़ता है तो समझना कि अभी उतना कचरा पड़ा हुआ है। शुद्ध उपयोग अर्थात् आत्मा को नहीं भूले। यानी जितने समय तक राग-द्वेष नहीं होते, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यहाँ सत्संग में बैठे हुए हों और हम सभी में शुद्धात्मा देखें तो क्या वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, उन सभी में शुद्धात्मा देखें लेकिन अगर कोई आकर थप्पड़ लगाए और उसमें शुद्धात्मा नहीं दिखाई दे तो समझना कि वह शुद्ध उपयोग नहीं है। पुलिस वाला जेल में ले जा रहा हो, उस समय पुलिस वाले का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब ठीक है! बीवी जब गालियाँ सुना रही हो, उस समय बीवी का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब सही है। ऐसा आत्मा आपको दिया है, आपको जानने की ज़रूरत है। मैंने कैसा आत्मा दिया है? निवल, शुद्ध आत्मा दिया है। वह वापस कभी भी जैसा था, वैसा नहीं होगा। यानी आपकी तैयारी होनी चाहिए।

प्रज्ञा द्वारा व्यवहार में शुद्धि

प्रश्नकर्ता : जब तक चंदूभाई जीवित हैं, तब तक उनका उपयोग तो व्यवहार में ही रहेगा। तो फिर आप जो शुद्ध उपयोग में रहने की बात करते हैं, वह कैसे होता है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा द्वारा होगा न! यानी खुद शुद्ध है और सामने वाले में भी शुद्ध है! प्रज्ञा और अज्ञा, इन दोनों में फर्क है न? उसमें अज्ञा काम करती है और यह, प्रज्ञा काम करती है, उतना ही अंतर है!

प्रश्नकर्ता : ये चंदूभाई व्यवहार में हैं?

दादाश्री : उसमें अज्ञा ही काम करती रहती है। अज्ञा और प्रज्ञा। अज्ञा यानी बुद्धि और प्रज्ञा यानी ज्ञान। प्रज्ञा जो है, वह ऐसा समझती है कि 'मैं शुद्ध हूँ' और कोई किसी को गाली दे, फिर भी उसके आत्मा को शुद्ध ही समझती है। उसे शुद्ध जानना है। उसमें फर्क नहीं आना चाहिए, वह है शुद्ध उपयोग।

अब अज्ञा में क्या होता है कि 'यह मैंने किया, मैंने दु:ख भोगा, उसने किया, उसने गालियाँ दीं मुझे'। प्रज्ञा क्या कहती है कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं भोक्ता नहीं हूँ, मैं ज्ञाता हूँ'। सामने वाले ने मुझे गालियाँ दीं तो वह निमित्त है बेचारा। वह भी कर्ता नहीं है और खुद भी कर्ता नहीं है, ऐसा भान रहा तो वह मोक्ष का सब से अंतिम साधन है।

अकर्ताभाव वहाँ शुद्ध उपयोग

प्रश्नकर्ता : गालियों को गालियों के स्वरूप में नहीं देखना, आप ऐसा कहना चाहते हैं क्या?

दादाश्री : कोई जब गाली देता है न, उस क्षण वह कर्ता नहीं है। उसे कर्ता देखोगे तो वह अशुभ उपयोग कहा जाएगा। जगत् में आप भी कर्ता नहीं हो और अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। इसलिए अगर अकर्ताभाव से देखोगे तो वही शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। हमारा हर मिनट ऐसा शुद्ध उपयोग रहता है। तुरंत ही, ऑन द मोमेन्ट। वर्ना फिर अशुभ हो जाएगा। तुरंत बिगड़ जाएगा। बाद में फिर खुद को ही सुधारना पड़ेगा न? शुद्ध उपयोग यानी कि 'खुद शुद्ध है, खुद कर्ता नहीं है किसी चीज़ का, खुद अक्रिय है'।

लेकिन अब दूसरों से क्या कहता है? 'आपने मेरे प्याले क्यों फोड़ दिए?' तब वह शुद्धता नहीं रही। वह खुद अपने आपको शुद्ध मानता है और शुद्ध बरतता भी है, लेकिन सामने वाले से ऐसा कहता है कि 'आपने मेरे प्याले फोड़ दिए', यानी उसे कर्ता मानता है, वह कमी है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् तब वह उपयोग में नहीं है।

दादाश्री : नहीं, उपयोग तो है लेकिन ऐसे उपयोग बिगड़ गया। शुद्ध उपयोग में नहीं है, वह अशुभ उपयोग हुआ। अत: किसी को कर्ता नहीं मानना है, तभी शुद्ध उपयोग रहेगा। हम अक्रिय और सामने वाले भी अक्रिय। 'जगत् में कोई भी कर्ता नहीं है। क्योंकि सभी शुद्ध आत्मा हैं।' जब ऐसा अनुभव में आएगा, तब सर्वत्र शुद्ध उपयोग रहेगा।

'मैं कर रहा हूँ, वह कर रहा है और वे कर रहे हैं', जहाँ पर ऐसा भाव नहीं है, वहाँ शुद्ध उपयोग है, संपूर्ण। यह तो अगर ज़रा सा किसी ने गाड़ी के सामने लाल झंडी दिखाई तब, 'आप लाल झंडी क्यों दिखा रहे हो?' तो फिर वहाँ पर कच्चे पड़ गए। क्योंकि वह दिखा ही नहीं रहा है! कोई भी कर्ता नहीं दिखाई देना चाहिए। तभी वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा।

'नहीं है मेरा' कहो तब भी जागृति

प्रश्नकर्ता : यह जो सरप्लस टाइम में इस प्रकार से एक सामायिक करनी है कि चंदूभाई सुबह से क्या कर रहा था, वह सब देखना है, तो फिर इस तरह से हमने यह देखा तो वह किसमें जाएगा? उसमें फिर वे सारे दोष भी दिखाई देते हैं, उन दोषों को देखने की प्रक्रिया, प्रतिक्रमण करने की प्रक्रिया...

दादाश्री : हाँ, वह सब आत्मा में आता है।

प्रश्नकर्ता : वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ। आत्मा पक्ष में आता है इसलिए फिर वह शुद्ध उपयोग है। शुद्ध उपयोग और आत्मा में रहना, इन दोनों में फर्क इतना ही है कि शुद्ध उपयोग उपयोगपूर्वक है। शुद्ध उपयोग अर्थात् सामने वाला व्यक्ति थप्पड़ मारे, तब भी आपका यह नहीं जाना चाहिए कि 'वह शुद्धात्मा है'।

प्रश्नकर्ता : और आत्मा में रहना यानी कैसे?

दादाश्री : आत्मा में रहना अर्थात् हमने अभी यह जो बात की, उसे आत्मा में रहना कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आँखें बंद करके अंदर सभी दोषों को देखते हैं, यह सब?

दादाश्री : यह सब आत्मा में रहना कहा जाएगा। जबकि वह उपयोग कहा जाएगा। वह अंतिम उपयोग है। थप्पड़ मारने वाला कौन है, किसे मार रहा है, मैं कौन हूँ, यह सब क्या है? ऐसा सब ध्यान रहे, वह शुद्ध उपयोग। 'मारने वाले का दोष है, किसका दोष है, कौन मार रहा है, किसे मार रहा है'? वह सब तुझे जानना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उसे अंतिम उपयोग कहा गया है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा उपयोग बरते, उस समय ऐसा ही कहा जाएगा न, कि आत्मा में रहा?

दादाश्री : वह बात ही अलग है न! उसकी तो बात ही अलग है।

इन भाई का रिवाज़ बहुत अच्छा है, कुछ आया कि, 'मेरा नहीं है', ऐसा करके अलग।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय ऐसी जागृति भी रखनी पड़ेगी न, कि 'मैं कौन हूँ'?

दादाश्री : वह जागृति रहती ही है। 'मेरा नहीं है' कहने वाला उस समय इस जागृति में रहता है। 'मेरा नहीं है' ऐसा कहते हो तब भी वह जागृति है। क्योंकि आपको तो 'क्या तेरा है और क्या तेरा नहीं है', वह जागृति दी है।

नहीं पड़ना चाहिए मन पर पर्दा

इस जगत् के लोग मन पर कोई बात न लें, ऐसा कर सकते हैं लेकिन हमें तो मन पर लेना चाहिए। ज्ञाता-द्रष्टा रहे, उसी को ही मन पर लिया कहते हैं। मन पर तो लेना ही चाहिए न! और बाद में वह तो मन पर आता ही है।

इन भाई का तो कोई अपमान करे तभी अपने आप ही मन पर पर्दा पड़ जाता है। तब मैंने कहा, 'मन पर पर्दा मत पड़ने देना। यह तो अवसर कहलाता है'। आपको नहीं लगता कि आपने अवसर खो दिया?

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। लेकिन मन पर उसका इफेक्ट होने दें, और ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो उसका इफेक्ट होगा ही नहीं न?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहे उसका मतलब मन पर लिया ही कहा जाएगा। यानी वह आपके लिए सुअवसर कहलाता है। ज्ञाता-द्रष्टा अर्थात् आपको इससे ज़्यादा और कुछ करने का रहा ही नहीं न! यह तो, वह ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रहता, मन पर पर्दा ही पड़ जाता है।

एक व्यक्ति बहरा हो, उसे हम गालियाँ दे तो उसका संयम दिखता है, वह बहरे का संयम है। उसे संयम कैसे कहा जाएगा? बहरे व्यक्ति के पास जाकर गालियाँ दे और फिर कहे कि देखो, ये साहब कितने अधिक संयमी हैं! तब हम कहें, 'रुको, मैं उनका संयम दिखाता हूँ।' फिर दूसरी तरह से उन्हें छेड़ें न, तो वापस कषाय उत्पन्न होते हैं। क्योंकि उनके कान बहरे हैं, इसलिए वे तो गालियाँ नहीं सुन पाते। लेकिन दूसरी इन्द्रियाँ बहरी नहीं होती न! फिर अन्य इन्द्रियों की हम छेड़खानी करें तब जाग्रत हो जाते हैं वापस।

यह तो क्या कहता है कि मेरे मन पर पर्दा पड़ जाता है। इसलिए फिर वह इसका पूरा लाभ नहीं उठाता है। तुझे समझ में आया न, लाभ कैसे उठाना है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसे पूरी तरह से जान लेना चाहिए, तौल करना चाहिए, कितने-कितने वज़न का 'लोड' है इस गाली का।

अर्थात् संयम, वह तो सब से बड़ा साधन कहलाता है। ऐसे चार संयम पूरे दिन में किए हों तो चार गुणा चार सोलह संयम शक्ति शाम तक जमा हो जाती है। हमारी, ज्ञानी पुरुष की संयम शक्ति इस तरह बढ़ती रहती है। क्योंकि हमारे तो रोज़ पाँच-पच्चीस संयम हो ही जाते हैं न! तो फिर पच्चीस गुणा पच्चीस छः सौ पच्चीस, संयम शक्ति इकट्ठी हो जाती है।

पुद्गल परिणाम को अलग देखना, वह संयम

कोई गाली दें न, तब महात्माओं को बाहर समता रहती है लेकिन अंदर मशीनरी चलती रहती है तो वह परपरिणाम है, ज्ञेय स्वरूप है। उस समय कह देना कि हमारे और आपके बीच तो ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है, शादी संबंध नहीं है। ऐसा कहने से अंदर वाले सभी ज्ञेय हड़बड़ा कर भाग जाएँगे या भूगर्भ में घुस जाएँगे!

अब क्रोध-मान-माया-लोभ, वे परपरिणाम हैं। वे स्वपरिणाम नहीं हैं। परपरिणाम, वह तो जैसा अंदर माल भरा हुआ होगा वैसा फूटेगा। फूटता है तो हमें समझना है कि यह तो फटाके का माल है। जैसा बारूद भरा है वैसा ही फूटेगा। हम उन सभी के ज्ञाता-द्रष्टा हैं।

कषायों का निर्वाण होने के बाद (व्यवहार) आत्मा का निर्वाण होता है। अब कषाय ज़ोर नहीं लगाते न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : कषाय करने की जगह पर कषाय नहीं होने दे, वह है आत्मपरिणाम। आत्मपरिणाम खुद के हाथ में आ गया, फिर क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : आत्मपरिणाम, वही संयम परिणाम है?

दादाश्री : संयम परिणाम अर्थात् क्या? *पुद्गल* में आत्मा एकाकार नहीं हो, उसे कहते हैं संयम परिणाम। अलग ही बरतता रहे। आप एकाकार होने देते हो? एकाकार होने दोगे तो हिंसक भाव हो जाएगा। यह तो हिंसक भाव नहीं है, यह संयम परिणाम कहलाता है। संयम परिणाम अर्थात् *पुद्गल* में चाहे कितना भी सर्जन-विसर्जन हो रहा हों, लेकिन स्वपरिणति नहीं छोड़ता। यह कितना सुंदर हिसाब है! बाहर सर्जन-विसर्जन हो रहा हो, धमाचौकड़ी मच रही हो, फिर भी स्वपरिणाम नहीं छोड़ता।

अंदर चाहे कैसे भी परिणाम उत्पन्न हों, अंदर चाहे कैसी भी हलचल मच जाए फिर भी बाहर किसी को पता ही न चले, वह संयम है। इन्द्रिय संयम को संयम ही नहीं कहते। कषाय मंद हो जाए, उसी को संयम कहते हैं। संयम में कौन आ सकता है? स्वपरिणति वाला ही। वह संयमी कहलाता है। परपरिणति वाले में संयम नहीं होता। वृत्तियाँ वापस अपने घर की ओर मुड़ने लगीं हैं। आंशिक रूप से शुरुआत हुई, वह संयम, फिर तो देर ही नहीं लगती। अंतिम जन्म में पाँच सालों में सभी चीज़ें आ जाती हैं। कितनी देर में होता होगा यह सब? क्योंकि संयम परिणाम इतना अधिक बढ़ता जाता है, इतना अधिक बढ़ता जाता है, इतना अधिक बढ़ता जाता है, कि पूछो मत। किसी मनुष्य में करोड़ जन्मों में जितने संयम परिणाम नहीं होते उतने संयम परिणाम एक ज्ञानी पुरुष में एक घंटे में ही बरतते हैं। तब उससे भी आगे जाए, तो केवलज्ञानी में क्या होता होगा? बहुत ही संयम परिणाम।

संयम परिणाम अर्थात् आत्मपरिणाम और *पुद्गल* परिणाम, दोनों का यथार्थ रूप से अलग रहना। *पुद्गल* परिणाम को देखना, वही आत्मपरिणाम है।

संयोग मात्र पुद्गल का

अब वह जो (उल्टा) बोला, वह किसकी डाक है उसका आपको पता करना चाहिए, कि क्या यह डाक *पुद्गल* की है? *पुद्गल* की सारी डाक संयोगी होती हैं। और कोई भी संयोग है तो वह डाक आत्मा की नहीं हो सकती, अर्थात् कोई भी संयोग आया तो वह *पुद्गल* का है। अब उसने उल्टा बोला, वह भी संयोग हुआ न? वह *पुद्गल* का है इसीलिए, 'मेरा नहीं है', ऐसा कह देना तो अलग। क्योंकि अनादि से आदत है, अभ्यास हो गया है न, वह छूटता नहीं है। इसलिए कुछ समय, दो-तीन महीने तक 'मेरा नहीं है', ऐसा कहेंगे तो फिर राह पर आ जाएगा। पहले 'मेरा नहीं है', ऐसा कहना चाहिए। क्योंकि शुद्धात्मा होने के बाद कोई भी चीज़ अपनी नहीं है। सिर्फ, यह जो चंदूभाई की प्रकृति है, वह अपनी पहले की गुनहगारी का फल है। अब उसका समभाव से *निकाल* करके अर्थात् साफ करके जाने देने जैसा है। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि, 'अज्ञान से बांधे हुए को ज्ञान से खत्म कर'। शुद्धात्मा के हिसाब से ही इन सब को खत्म कर देना है, इतना ही है, बाकी सारा काम अब पूरा हो गया है।

अब सिर्फ, जो संयोग मिलें, उन्हें 'मेरे नहीं हैं', ऐसा कह दिया। वे संयोग बाह्य भाव को लेकर मिले हैं, संसार भाव की वजह से वे हैं। संयोग मिलें तब, 'मेरा नहीं है', ऐसा कह दोगे तो छूट गया। जो डाक जिसकी है, वह उसे दे देनी है। बेवजह आप डाक ले लोगे तो फिर वे चिढ़ेंगे कि, 'मेरी सभी डाक खोल दी हैं'। हम तो कहते हैं कि, 'लो अंबालाल भाई, यह आपकी डाक आई।'

यह तो विज्ञान है! इसमें, ज़रा सा भी, किंचित्मात्र भी असर नहीं हो, ऐसा मैंने ज्ञान दिया है और यदि हमारे इन शब्दों को पकड़ लो तो फिर कोई दिक्कत नहीं आएगी। लेकिन पहले की आदत है न! पहले उस फॉरेन को होम माना हुआ था, वह आदत अभी भी जाती नहीं है। अभी भी फॉरेन में चले जाते हैं। लेकिन इतनी जागृति रखनी है कि कोई भी संयोग आए तो वह आत्मा का नहीं है। आत्मा असंयोगी है और संयोग बाहर के हैं, वे फिल्म हैं, उन्हें देखते रहना है आपको। और यदि चंदूलाल संयोग के साथ झगड़ा करे तो उसमें भी दिक्कत नहीं है। ऐसे आपको भी देखते रहना है। चंदूलाल किसी से झगड़ रहे हों तब भी देखते रहना है। फिर उनके जाने के बाद आप कहना कि, 'चंदूभाई, ज़्यादा ऐसा मत करना। ज़रा कम करो।' उस व्यक्ति के सामने कहोगे तो बुरा दिखेगा। वह कहेगा, 'ये दो लोग कौन हैं अब भला? खुद अपने आप को ही डाँट रहा है।'

हम आपको यह कह रहे हैं कि संयोग मात्र ज्ञेय है। कड़वा-मीठा संयोग आए तो उसे ज्ञेय के रूप में देखते रहोगे इससे वह कड़वा-मीठा नहीं लगेगा। यानी कि उसका रस आप पर असर नहीं डालेगा। इसलिए ज्ञेय के रूप में देखते रहो। किसी व्यक्ति ने गालियाँ दी तो उसने गाली दीं, वह संयोग कहा जाता है, कि 'चंदूभाई ने मेरा इतना सब बिगाड़ दिया, यह नुकसान किया।' अब, उन शब्दों का आपको संयोग मिला। तब आप सोचोगे कि यह संयोग मुझे क्यों मिला? तो कहते हैं, 'बाहिराभाव के आधार पर।' बाह्यभाव जो किए थे कि, 'यह भाई ऐसा है और वैसा है', और ऐसे सारे भाव किए,

यानी उन बाहिराभाव के फलस्वरूप वापस संयोग मिला। अब, हम उस समय क्या कहते हैं कि, 'संयोग मात्र ज्ञेय स्वरूप है।' अगर आप उसे ज्ञेय की तरह देखोगे तो उसका असर खत्म हो जाएगा, बाहिराभाव का। और अगर आप ऐसा ही देखोगे कि, 'इस व्यक्ति ने मुझे ऐसा कहा', तो आप तन्मयाकार हो गए!

पाँच आज्ञा से छूटें पराई पीड़ा

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में जो गाँठें फूटती हैं, वे ऐसी-ऐसी फूटती हैं कि उनमें समाधान लेना कठिन हो जाता है?

दादाश्री : अपने ये 'पाँच वाक्य (आज्ञा)' हैं, वे आख़िर में समाधान ले आएँ, ऐसे हैं। जल्दी या देर से परंतु वे समाधान ले आते हैं। बाकी और किसी भी प्रकार से समाधान नहीं हो सकता। यह जगत् गुह्य पहेली है। 'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' वह कभी भी सोल्व होती ही नहीं। पूरे दिन खुद व्यवहार में उलझा हुआ ही होता है, फिर किस तरह वह आगे प्रगति करेगा? कोई न कोई पहेलियाँ खड़ी होती ही रहती हैं। सामने कोई मिला कि पहेली खड़ी हुई।

प्रश्नकर्ता : एक पहेली पूरी की हो, वहाँ दूसरी पहेली मुँह फाड़कर खड़ी ही होती है।

दादाश्री : हाँ, यह तो पहेलियों का संग्रहस्थान है। परंतु यदि तू अपने आपको पहचान जाए तो हो गया तेरा कल्याण! वर्ना ये पहेलियाँ तो हैं ही डूबने के लिए! यह सब पराई पीड़ा है, ऐसा समझ में आ जाए, तो वह भी अनुभवज्ञान है। अनुभव में आए कि यह पीड़ा मेरी नहीं है, पराई है, तब भी कल्याण हो जाएगा।

व्यवहार की कुछ माथापच्ची मत करना। आपको निश्चय करना है कि दादा की आज्ञा का पालन करना है, फिर व्यवहार में पालन हो पाया या नहीं, वह व्यवहार के अधीन है। आपके मन में ज़रा सी भी ढील नहीं आनी चाहिए कि, 'हो जाएगा', इसमें ढील दे दो न! ढील देने की आपको ज़रूरत ही नहीं है।

आप निश्चय करो कि पाँच आज्ञा का मुझे पालन करना ही है। पालन न हो पाए तो उसका बोझ मत रखना। क्या मैं नहीं जानता? मैं भी जानता हूँ न कि व्यवहार पराधीन है। लेकिन जान-बूझकर दुरुपयोग मत करना। अंदर ऐसा मत रखना कि, 'पालन नहीं करेंगे तो क्या हो जाएगा? पालन हो पाए तो ठीक है', ऐसा भी नहीं रखना है।

आज्ञा पालन हम किसे कहते हैं कि जितनी पालन हो सके उतनी आसानी से पालो। नहीं पाली जा सके, उतनी मन में जागृति रखो कि ऐसा नहीं होना चाहिए। बस, तो वह पालन करने के बराबर है!

ड्रामेटिक रहकर करो समभाव से निकाल

कोई कहे कि, 'आप तो नालायक हो।' तब कहना, 'भाई, तूने तो आज जाना, हम तो पहले से जानते हैं यह।' तो *निकाल* हो गया। क्या ऐसा आप पहले से नहीं जानते?

प्रश्नकर्ता : हम यदि ऐसा कहें न कि, 'हम तो पहले से ही नालायक थे, तूने आज जाना', तो कहेगा कि, 'नालायक तो हो, पर बेशर्म भी हो।' ऐसा कहेगा फिर।

दादाश्री : तो कहना, 'भाई, बाकी हमें तो ऐसा समझ में आया।' वर्ना हो सके, तब तक बोलना नहीं। मौन से निबटता हो तो निबटा देना। लेकिन यह तो आप अपने मन से कहना। मन समाधान माँगता है या नहीं माँगता?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी ड्रामेटिक उसे कहते हैं कि वह हार्टिली ही हो। हार्ट ही पूरा ड्रामा में जाता है। आप ड्रामा के बाहर हो। हार्टिली ड्रामा!

प्रश्नकर्ता : तो जब हार्टिली ड्रामेटिक बातचीत करें, तब वह जागृति भी रहनी चाहिए न, कि दूसरों को किंचित्मात्र दुःख नहीं हो?

दादाश्री : वह जागृति अपने आप रहती ही है। हार्टिली वाणी निकलती है न! आप ड्रामेटिक बोलोगे न, तब आपका हार्टिली होगा ही। यदि जागृति कम हो, तो ड्रामेटिक नहीं कहलाएगा न! फुल जागृति को ही कहते हैं ड्रामेटिक। बाहर मैं भर्तुहरि राजा, अंदर मैं लक्ष्मीचंद तरगाड़ा, ये सब जागृति होनी चाहिए।

ड्रामेटिक बोलेंगे तो किसी फाइल के साथ बिगड़ेगा नहीं और ये फाइल साथ में आने वाली हैं। ये फाइलें यों एकदम डिसमिस नहीं हो जाएँगी। वे साथ में आएँगी। हाँ, क्योंकि रिएक्ट हुई हैं न! इसलिए फाइलों (के साथ) मत बिगाड़ना। वे छूट नहीं जाएँगी।

इन फाइलों का *निकाल* करने के लिए, आरोपित भाव से, 'मैं हूँ', उसमें ड्रामेटिक भाव रखना। ड्रामे का *निकाल* तो करना पड़ेगा न? जिसका अहंकार चला गया हो, वह किसी भी व्यक्ति को खुश कर सकता है और 'समभाव से *निकाल*' कर सकता है!

सुलगते कोयले आपके ऊपर गिरें तब पूरा ज्ञान आपको तुरंत हाज़िर होता है न, कि डालने वाला व्यक्ति, वह है तो शुद्धात्मा ही न? आपका हिसाब है यह। आप शुद्धात्मा हो, आप पर नहीं डाला, चंदूभाई पर डाला है। वह चंदूभाई का हिसाब था इसलिए उसने यह हिसाब चुका दिया। ये चंदूलाल के कर्म का उदय, डालने वाला तो निमित्त है। आपको समभाव से *निकाल* करना है। बल्कि आशीर्वाद देना कि तूने मुझे एक कर्म में से मुक्त किया।

राग-द्वेष नहीं, वह समभाव

सामने वाला गालियाँ देगा, लेकिन तू फाइल का समभाव से *निकाल* करना। फिर यदि सामने वाला उल्टा बोल जाए, तब भी खुद तय किया हो कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है।' यह जो तय किया है, इसी को व्यवहार माना जाता है। यह बोला, उसे व्यवहार नहीं माना जाता। झगड़ा, मारपीट हो जाए तो वह व्यवहार नहीं है, लेकिन 'मारपीट नहीं करनी है', उसने जो ऐसा तय किया है कि समभाव से *निकाल* करना है, वही उसका व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : यह आपने जो बताया, उस आशय तक कितने पहुँच सकते हैं?

दादाश्री : आशय तक तो कम पहुँचते हैं लेकिन फिर भी जो बिल्कुल ही वीरान हो गया था, उसमें से कुछ तो उगेगा न!

प्रश्नकर्ता : व्यवहार जो डिस्चार्ज के रूप में है तो फिर व्यवहार को शुद्ध करने की या होने की बात कैसे आई?

दादाश्री : वह डिस्चार्ज के रूप में है, वह जिनको हमने ज्ञान दिया है, उनके लिए है। इसके बावजूद भी अपना अंदर का जो व्यवहार है, वह आदर्श है। यह बाहर के भाग वाला डिस्चार्ज है, जबकि अंदर का शुद्ध व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : अंदर का व्यवहार, वह ज़रा स्पष्ट कीजिए, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : वह जो है कि, 'ऐसा नहीं होना

चाहिए', वह व्यवहार है। बाहर गुस्सा करता है और साथ-साथ अंदर ऐसा रहता है 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह व्यवहार है। यह शुद्ध व्यवहार है। आत्मा जानकार है और 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह बीच में रहता है।

प्रश्नकर्ता : 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह कहने वाला कौन है?

दादाश्री : वह सब इस प्रज्ञा में से है, लेकिन वह शुद्ध व्यवहार है एक प्रकार का। अत: जब कोई गाली दे रहा होता है तब भी, अंदर अपना उसके प्रति व्यवहार बहुत उच्च होता है, मन बिगाड़े बगैर व्यवहार होता है।

डिस्चार्ज को छानो, ज्ञान से

समभाव यानी मुनाफा और नुकसान को समान नहीं कहते लेकिन मुनाफे के बजाय नुकसान हो जाए तब भी हर्ज नहीं, मुनाफा आए तो भी हर्ज नहीं। मुनाफा से उत्तेजना नहीं होती और नुकसान से डिप्रेशन नहीं आता। यानी कि कुछ भी नहीं, द्वंद्वातीत हो चुके होते हैं। यह पूरा जगत् तो द्वंद्व में फँसा हुआ है।

कोई आपको कोर्ट में ले जाए तो वहाँ भी राग-द्वेष नहीं करने हैं। सामने वाले पर कभी भी, किसी भी क्रिया में राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। इन डिस्चार्ज कर्मों का (समभाव से) *निकाल* करना है। डिस्चार्ज में राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। जहाँ नया माल भरना हो, वहाँ राग-द्वेष होते हैं। ज्ञान दशा में डिस्चार्ज होता है न, तो समभाव से *निकाल* कर दो!

फूल चढ़ाने पर राग न हो और पत्थर मारने पर द्वेष न हो, वही समभाव। कीर्ति-अपकीर्ति की अब वांछनाएँ नहीं रही कोई। अब छूटने से ही मतलब है। फिर भी यदि अपकीर्ति आए तो वह डिस्चार्ज है और कीर्ति आए तो वह भी डिस्चार्ज है। यानी यह डिस्चार्ज रहा है अब थोड़ा-सा। दिन में कभी भी फुरसत मिले तो इस ज्ञान से छानते रहना है।

सहन नहीं, समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : तो समभाव से *निकाल* करना यानी निगल जाना (सह लेना)? तो क्या ऐसा भाव रखना चाहिए या फिर वर्तन में आना चाहिए?

दादाश्री : निगल जाए तो उसे समभाव में रहना नहीं कहा जाएगा। हमें मन में भाव ही करना है कि 'समभाव से *निकाल* करना है।' हमें किसी शहर में जाना है, ऐसा तय करें और नहीं जा पाएँ तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन आपको तय करना है। पहले आप ऐसा तय नहीं करते थे कि मुझे समभाव से *निकाल* करना है। अर्थात् यह परंपरा हुई। अब, आप तय करते हो, फिर भी एक्सिडेन्ट हो जाए, तो वह अलग बात है लेकिन हर बार तय करना है। निगल नहीं जाना है, उसे निगल गए या बाहर निकल गया, वह बात अलग है। दोनों ही उल्टी हैं। उल्टी हो रही हो तो उसे दबाना नहीं है। उल्टी हो रही हो उसे दबाया तो रोग होता है।

आप ऐसे समभाव से *निकाल* करते हो तो उसी को कहते हैं कि शुद्धात्मा हाज़िर है, भले ही दिखे नहीं। फिर अगर चंदूभाई चिढ़ गए तो वह बात अलग है और आप तो समभाव से *निकाल* करने वाले, वे अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, समभाव से *निकाल* कौन कर सकता है? ज्ञान लिया हो वह कर सकता है या दूसरा कोई भी कर सकता है?

दादाश्री : दूसरों के लिए 'समभाव से *निकाल*' शब्द ही नहीं है न! दूसरा तो सहन

करता है बेचारा। लेकिन सहन करना तो गुनाह है। सहन करना वह तो सहज रूप से थोड़ा-बहुत, ऐसी छोटी-छोटी बातों में सहन कर लेना है। लेकिन यदि बड़ा सहन करें तो फिर स्प्रिंग उछलती है। जब उछलती है तो सब को मार देती है, उड़ा देती है। इसलिए सहन नहीं करना है, निगल नहीं जाना है, समभाव से *निकाल* करना है। ये सभी समभाव से *निकाल* करते हैं!

प्रश्नकर्ता : दादाजी खुद निगल जाते हैं? ये सारे महात्मा चाहे कुछ भी करें, तो दादाजी आप निगल नहीं लेते?

दादाश्री : हमें निगलना नहीं होता। हमें तो कुछ भी निगलना नहीं होता। हमारा ज्ञान ही ऐसा है कि महात्मा चाहे कुछ भी करें तब भी हमें फिट हो जाता है। हमारा ज्ञान ही ऐसा है। ज्ञान यानी प्रकाश। महात्मा हरे रंग का हो तो वह हरे रंग का दिखाई देगा। यह लाल हो तो लाल रंग का दिखाई देगा। हमें प्रकाश ही दिखाई देता है और उसमें भी महात्मा तो शुद्ध प्रकाश वाला है। उसकी प्रकृति हम जानते हैं कि इसकी प्रकृति यह है। हमें कुछ निगलना नहीं पड़ता। हम निगल जाएँ तो उसके बाद टेन्शन खड़े हो जाएँगे। हम तो मुक्त रहते हैं, ऐसे रौब के साथ! पूरे ब्रह्मांड के राजा हों, उस तरह से रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार समभाव से *निकाल* करना चूक जाते हैं।

दादाश्री : चूक न जाओ, तब सही कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे खेद रहा करता है कि दादा का ज्ञान मिलने के बाद समभाव से *निकाल* क्यों नहीं कर पाता?

दादाश्री : तुझे समभाव से *निकाल* करना है, ऐसा तेरा निश्चय होना चाहिए। नहीं रह पाता उसके लिए हम तुझे लेट गो करते हैं न! इस फाइल का *निकाल* करते समय उस निश्चय को उस समय भूल जाओ, वैसी अजागृति नहीं होनी चाहिए, वहाँ पुरुषार्थ धर्म चाहिए। भूल नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन मैं ऐसा कहना चाहता हूँ कि मैं निश्चय करूँ और सतत मेरे भाव में रखूँ कि मुझे इन फाइलों का समभाव से *निकाल* कर देना है, तो वह ठीक कहा जाएगा?

दादाश्री : निश्चय ठीक है लेकिन धीरे-धीरे फिर आगे निश्चय के अनुसार बरतता है या नहीं, वह भी 'देखना' पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : वह तो मैं देखूँगा, उसमें कोई प्रोब्लम नहीं है।

दादाश्री : तो हर्ज नहीं है, तो करेक्ट (सही) है।

निश्चय स्वाधीन है, व्यवहार पराधीन है और परिणाम तो पराधीन का भी पराधीन है। व्यवहार में तो आप हो, ये सब हैं लेकिन परिणाम का क्या हो सकता है? यानी आपको सिर्फ निश्चय करना है, बाकी व्यवहार पराधीन है।

संसार टिका है बैर की नींव पर

फाइलों का समभाव से *निकाल* किया था, या यों ही है सब? समभाव से *निकाल* किया, तो किसी के साथ बैर नहीं बंधेगा। बैर नहीं बाँधना और पुराने बैर का *निकाल* करना। यदि आपको कुछ पुरुषार्थ करना नहीं आए तो आखिर में इतना करना; बैर का *निकाल* करना। किसी से बैर बंध गया हो, तो पता चलता है न कि इसके प्रति बैर ही है। मैं उसे परेशान नहीं करता, फिर भी वह मुझे परेशान करता

रहता है। यानी कि उसके साथ बैर बंधा है, ऐसा पता चले तो उसके साथ *निकाल* करना। यदि उस बैर का *निकाल* हो गया तो, वह सब से बड़ा पुरुषार्थ कहा जाएगा। यह जगत् बैर से ही खड़ा रहा है। इसका 'बेसमेन्ट' (नींव) अन्य कोई चीज़ नहीं है, जगत् का 'बेसमेन्ट' बैर ही है।

यह जगत् प्रेम से नहीं खड़ा है। लोग समझते हैं कि प्रेम से खड़ा है। लेकिन नहीं, फाउन्डेशन (नींव) ही बैर के हैं। इसीलिए तो हम, बैर का *निकाल* करने को कहते हैं। समभाव से *निकाल* करने का कारण ही यह है। प्रेम करेंगे न, तो अपने आप ही बैर उत्पन्न होकर रहेगा। क्योंकि आसक्ति से क्या होता है? वह बैर लाती है! और समभाव से *निकाल* इसीलिए करना है कि जगत् बैर से खड़ा है। इसलिए यदि कहीं पर बैर रहता हो तो आप उससे क्षमापना करके भी, माफी माँगकर भी, उसके पैर छूकर भी, उसके साथ बैर नहीं बाँधना। और उसके साथ के बैर छुड़वा देना ताकि वह व्यक्ति खुश हो जाए कि, 'ना भाई, अब हर्ज नहीं है।' उसके साथ समाधान कर लेना ताकि आपको रोके नहीं।

अब, बैर छूटता कब है? खुद को आनंद रहे तो। वह कैसा आनंद? आत्मा का आनंद, वह पौद्गलिक आनंद नहीं है। *पुद्गल* के आनंद में भी बैर बढ़ता रहता है और आत्मा का आनंद अर्थात् ज्ञानी पुरुष के पास सत्संग में, या चाहे कहीं भी वह आनंद अंदर उत्पन्न हुआ कि फिर सारे बैर छूट जाते हैं।

व्यवस्थित से समाप्त होता है बैर

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में अभी किसी के लिए ज़रा ऐसा कुछ बैर भाव भी हो जाता है लेकिन तुरंत ही वापस व्यवस्थित और समभाव से फाइलों का *निकाल* याद आ जाता है। इसलिए वह तुरंत ही गायब हो जाता है।

दादाश्री : वह ठीक है।

प्रश्नकर्ता : यह जो समकित प्राप्त हुआ है, इसमें कुछ इधर-उधर नहीं हो जाएगा न? ऐसा प्रश्न होता है, फिर भी अंदर ऐसी शंका नहीं है कि इधर-उधर हो जाएगा।

दादाश्री : वह तो चेहरा भी बिगड़ जाता है, लेकिन वह खुद जानता है कि चेहरा बिगड़ गया।

प्रश्नकर्ता : पहले जो परिणाम चार दिन तक होते रहते थे, उन्हें अब व्यवस्थित के ताबे में सौंप दिया है। समभाव से फाइल का *निकाल* करना है, इसलिए एक-दो मिनट के लिए वैसा होता है, लेकिन तुरंत ही फिर शांत हो जाता है।

दादाश्री : यह व्यवस्थित ही है, एक्ज़ेक्ट। मन-वचन-काया के जो कुछ भी परिणाम आते हैं, तो वे व्यवस्थित हैं। उन्हें सिर्फ देखना है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि यह जो व्यवस्थित की दृष्टि है, यानी कि खुद के मन-वचन-काया चाहे जो करें, वहाँ पर व्यवस्थित की जागृति में रहना है। और सामने वाले के मन-वचन-काया चाहे जो करें, वहाँ पर भी उसी जागृति में रहना है, ऐसा ही है न?

दादाश्री : *पुद्गल, पुद्गल* का करता है, आत्मा को उसे देखते रहना है।

पड़ता है फर्क भोगवटे में

प्रश्नकर्ता : हम यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं तो क्या व्यवस्थित में बदलाव हो जाता है? वह बदलता है?

दादाश्री : व्यवस्थित तो सारा बदलाव

वाला है न! ज्ञाता-द्रष्टा रहता है उसका व्यवस्थित पूरा ही बदल गया। कोई गालियाँ दे लेकिन हम ज्ञाता-द्रष्टा रहे। वह गाली देने वाला कौन है, उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहे। 'गाली किसे दे रहा है', उसके ज्ञाता-द्रष्टा। गाली देने वाला कौन-कौन है? वह अकेला ही है या दो लोग हैं? एक निर्दोष होता है और दूसरा दोषित होता है। यह गाली किसे दे रहा है, वह भी जानता है। इस प्रकार से जिसे यह सब समझ में आ गया है, उसे देर ही नहीं लगती न!

प्रश्नकर्ता : देर ही नहीं लगती, लेकिन क्या इससे व्यवस्थित में बदलाव हो जाता है?

दादाश्री : व्यवस्थित में बदलाव हो ही गया न! भले ही बारह सौ मन गालियाँ दे रहा हो लेकिन व्यवस्थित में बदलाव हो गया। उस व्यवस्थित का असर ही नहीं हुआ न!

प्रश्नकर्ता : 'गालियाँ दीं', वह हमने देखा और 'किसे गालियाँ दीं', वह भी हमने देखा!

दादाश्री : व्यवस्थित यानी किस वजह से? व्यवस्थित यानी क्या कि, भाई, यह होने योग्य था वही हुआ है और यह एक्ज़ेक्ट है। हमें ऐसा कर्मफल मिला है।

'व्यवस्थित' की समझ से केवलज्ञान

गाड़ी में से उतार दें तो समझना कि 'व्यवस्थित' है। फिर वापस बुलाएँ, तब भी 'व्यवस्थित' और फिर उतार दें, तब भी 'व्यवस्थित'। ऐसे सात बार उतार दें, तब भी 'व्यवस्थित'! सात बार चढ़ाएँ तब भी 'व्यवस्थित'। ऐसा जिसे बरतता है उसे केवलज्ञान हो जाएगा! हमने ऐसा 'व्यवस्थित' दिया है कि केवलज्ञान हो जाए, 'व्यवस्थित' यदि संपूर्ण, पूरापूरा समझ ले तो! 'व्यवस्थित' तो चौबीस तीर्थंकरों के शास्त्रों का सार है।

प्रश्नकर्ता : आपको पहले व्यवस्थित समझ में आया होगा, बाद में यह ज्ञान देने लगे न?

दादाश्री : हाँ, बाद में ही दिया था न! 'व्यवस्थित' मेरे अनुभव में कितने ही जन्मों से आया है और उसके बाद ही मैंने यह बाहर दिया। नहीं तो दे ही नहीं सकते न! इसमें तो जोखिमदारी आती है। वीतरागों का एक अक्षर भी बोलना और किसी को उपदेश देना, बड़ी जोखिमदारी है! आपको कितनी बार मोटर में से उतार दें तो 'व्यवस्थित' हाज़िर रहेगा?

प्रश्नकर्ता : चार-पाँच बार, फिर कमान छटक जाएगी।

दादाश्री : कमान छटकती है तो वह *पुद्गल* (अहंकार) की छटकती है। 'आपको' तो 'जानना' है कि यह *पुद्गल* की कमान छटकी है। आपको तो क्या कहना है कि, 'यह *पुद्गल* की कमान छटकी है, फिर भी मैं वापस आ गया और मोटर में बैठ गया।' यह कमान छटकी है, ऐसा 'आपको' 'जानना' चाहिए। यह 'व्यवस्थित' ऐसा सुंदर है! यदि कमान छटके और वापस टेढ़ा होकर (नाराज़ होना) चला जाए और फिर वापस नहीं आए तो वह गलत कहलाएगा। यह 'व्यवस्थित' समझ में आ गया, फिर कुछ भी दखल करने जैसा है ही नहीं। *पुद्गल* का जो होना हो सो हो, परंतु आपको टेढ़ा नहीं होना है। *पुद्गल* तो आपको टेढ़ा करने की ताक में लगा रहता है।

अपमान के समय होता है ज्ञान का टेस्टिंग

यह तो अद्भुत ज्ञान दिया है। रात को जब जागो तब हाज़िर हो जाता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' आप जहाँ कहोगे वहाँ हाज़िर हो जाएगा। और बहुत परेशानी आ जाए तो निरंतर

जाग्रत रहेगा। बहुत बड़ी परेशानी आ जाए और उससे भी बड़ी परेशानी आ जाए, बम गिरने लगें तो फिर (शुद्धात्मा की) गुफा में घुस जाएगा। केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी। बाहर बम गिरने लगें तो केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी। ऐसा ज्ञान दिया है।

एक परमाणु जितना भी कहीं पर हिलता है, उसकी जाँच करना। एक परमाणु जितना भी कहीं पर भय उत्पन्न होता है, ऐसा विकल्प भी उत्पन्न होता है? हमें तो, विकल्प उत्पन्न हो, उसके सामने हमारा यह ज्ञान हाज़िर ही होता है न, पर विकल्प उत्पन्न हुआ वह भय है। वह नहीं होना चाहिए। यदि हम शुद्धात्मा हैं, तो अन्य कुछ है ही नहीं। ज्ञान उसी को कहते हैं कि भय उत्पन्न ही नहीं होना चाहिए। उतनी कमी रह गई है। अपना खुद का सब टेस्ट (परिक्षण) पर रखना चाहिए। टेस्ट पर रखे बिना सब बेकार है।

आपको कल कोई विरोधी व्यक्ति मिल जाए, वह उल्टा-सीधा बोलने लगे, आपका अपमान करने लगे तो वह आपका विरोधी है या आपका थर्मामीटर है?

प्रश्नकर्ता : थर्मामीटर कहलाएगा न!

दादाश्री : हाँ, अब वह आपका थर्मामीटर कहलाएगा कि आपको दादा का ज्ञान हाज़िर रहता है या नहीं? यह व्यक्ति किसे कह रहा है?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई को।

दादाश्री : हाँ, तो वह चंदूभाई को कह रहा है। आपको तो कह ही नहीं सकता न! आपको तो पहचानता ही नहीं है न! कैसे पहचानेगा? चंदूभाई को कहते हैं, तब आप चंदूभाई से कहना कि आपका कुछ दोष होगा तभी कहते हैं न, वर्ना किसे फूरसत है?

यह 'ज्ञान' मिला है इसलिए सब 'पेमेन्ट' (चूकता) किया जा सकता है। विकट संयोगों में तो ज्ञान बहुत हितकारी है, ज्ञान का 'टेस्टिंग' (परिक्षण) हो जाता है। ज्ञान की रोज़ 'प्रैक्टिस' (अभ्यास) करने जाएँ तो कुछ 'टेस्टिंग' नहीं होता। वह तो एक बार विकट संयोग आ जाए तो सब 'टेस्टेड' हो जाता है।

आज्ञा पालन से संयम परिणमित होता है

अभी तो अंदर तरह-तरह की आँधियाँ आती हैं तो वहाँ भी स्थिरतापूर्वक हल निकालना। आँधियाँ कैसी-कैसी आएँगी? पूर्व कर्म की। मतलब भरा हुआ माल है। *पूरण* हुआ था, उसका *गलन* होते समय आँधी आती है। उस वक्त आपको स्थिरता रखनी चाहिए कि आँधी आई है। आप शुद्धात्मा, आपको होम डिपार्टमेन्ट में बैठकर देखते रहना है। क्योंकि आप में आत्मा अलग बरतता है, हंड्रेड परसेन्ट और *पुद्गल* अलग बरतता है और शुद्धात्मा दशा दी हुई है। अब इसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, कभी भी नहीं बिगड़ेगा। आप जान-बूझकर उखाड़ना चाहो तो उखड़ जाएगा, वर्ना उखड़ेगा नहीं। समझ में कम-ज़्यादा आए, उसमें हर्ज ही नहीं है। समझ की ज़रूरत ही नहीं है। ज्ञानी पुरुष की कृपा का ही फल है। यह अक्रम विज्ञान अर्थात् आपको कुछ भी नहीं करना है।

यानी अपना यह पूरा ज्ञान ऐसा दिया है। हम जानते थे, इस काल के जीवों को यदि लंबा ज्ञान देंगे न, तो गड़बड़ हो जाएगी। जो आराधन करना है उसके बदले, न जाने क्या आराधन करने लगते? अत: विज्ञान बहुत हाईक्लास दिया है पूरा और कुछ पढ़ना नहीं, मेहनत नहीं, कुछ भी नहीं। इसलिए उसे जागृति रहती ही है और सांसारिक मुश्किलों में भी पाँच आज्ञा अच्छी तरह से पालन कर सकते हैं।

इन आज्ञा का पालन करे न, इससे संयम उत्पन्न होता है। यह संयम वही पुरुषार्थ है। अपना संयम कौन सा है, कि ज्ञान में न रहता हो और पाँच आज्ञा में रहने का प्रयत्न करते रहना, वह संयम कहलाता है। यानी कि क्रोध-मान-माया-लोभ को रोकना, उसे कहते हैं संयम। यानी आप ज्ञान में रहो तो क्रोध-मान-माया-लोभ रुक जाते हैं!

आज्ञा चूके वहाँ प्रकृति सवार

प्रश्नकर्ता : जो आपके पास आया, ज्ञान लिया, उसे निराकुलता तो उत्पन्न हो ही जाती है। फिर यदि वह आज्ञा में रहे तब भी और न रहे फिर भी उसकी इतनी अधिक मस्ती रहती है!

दादाश्री : लेकिन, जो आज्ञा में नहीं रहता न, उस पर फिर धीरे-धीरे प्रकृति सवार हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बस, यही पोइन्ट चाहिए।

दादाश्री : प्रकृति सवार हो जाती है। आज्ञा में रहे तो फिर कोई उसका नाम नहीं लेगा। आज्ञा में नहीं रहे तो प्रकृति खा जाती है। दादा की कृपा से उस घड़ी शांति रहती है, बाकी सब रहता है, दो-दो साल, पाँच-पाँच साल तक रहता है। लेकिन उसका कोई अर्थ नहीं है, खा जाती है प्रकृति।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति खा जाती है यानी? प्रकृति सवार हो जाती है यानी?

दादाश्री : प्रकृति अपने जैसा बना देती है, वह भी फिर मार-पीटकर। और आज्ञाएँ बहुत आसान हैं, कोई कठिन नहीं हैं। हमने फिर सारी छूट दे रखी है। आज्ञा पालन करके फिर आराम से जलेबी और पकौड़े दोनों खाना। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए? जो भाये सो खाने की छूट दी है। यदि वहाँ बंधन रखा होता तो, हर बात में आपको ज्ञानी का बंधन कैसे पुसायेगा? लेकिन सीधी-सरल आज्ञाएँ हैं। जैसा है वैसा देखना है, क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : देखने में हर्ज नहीं है लेकिन देख नहीं पाते न!

दादाश्री : पाँच इन्द्रियों के सभी घोड़े यदि खुद चला रहे हों, तो खुद को लगाम खींचनी पड़ेगी और ऐसे ज़रा खींचनी और ढील देनी पड़ेगी। उसके बजाय मैंने कहा, 'छोड़ दे न, भाई। घोड़े इतने सयाने हैं कि वे घर ही ले जाएँगे और भाई, तू उल्टा उन घोड़ों को खून निकाल रहा है'।

आज्ञा पालन से अनुभव होगा आत्मा का

प्रश्नकर्ता : दादा, जो आत्मा दिया है न, दिन भर उसका पूरा-पूरा अनुभव कैसे रह सकता है?

दादाश्री : हाँ। लेकिन जो उल्टा रहता था, वह सीधा रहने लगा है इसलिए फिर आप पूछ-पूछकर आगे चलने लगो न! वह जो पाँच सौ के नुकसान वाला है, उसका *निकाल* हो जाता है लेकिन जिसमें पाँच हज़ार का नुकसान हुआ हो, उसमें देर लगेगी। उसे आपको देखते ही रहना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : जिसके प्रति भाव था, उसी के प्रति अभाव रखना है। अत: यदि अभाव रहता हो तो आपको समझना है कि यहाँ पर भाव बहुत रहता था, उसी कारण हमें कड़वा मिल रहा है।

उस पक्ष में बैठ जाते हैं इसलिए समझ में नहीं आता। यदि स्वतंत्र होना हो तो यह सब समझ में आ सके, ऐसा है। हमें उसके पक्ष में रहने का मतलब ही क्या है? न लेना, न देना।

प्रश्नकर्ता : दादा, छूटना है, लेकिन छूट नहीं पाते।

दादाश्री : अरे! छूटना है, लेकिन छूट नहीं पा रहे हो, वह तो आप जानते हो न! अगर आप उसके पीछे लगे रहोगे तो अपने आप ही धीरे-धीरे छूट जाएगा।

आपको जानना चाहिए कि यहाँ पर यह पट्टी चिपकी हुई है जो उखड़ नहीं रही। पानी लगाओगे, कुछ और लगाओगे तो ऐसे करते-करते उखड़ जाएगी। उखड़े बगैर चारा ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : तो आशा रखकर बैठे रहना है?

दादाश्री : आशा रखनी ही नहीं है। बैठे नहीं रहना है। जो छूट नहीं रहा है, उसे आपको 'देखते' रहना है। फिर आशा किसे रखनी है? आशा होती नहीं आत्मा को। क्या एक ही घंटे में पूरा घाटा खत्म हो सकता है? अनंत जन्मों का घाटा है, दो-तीन जन्म तो लगेंगे न! इससे पहले तो यह लाख जन्मों में भी नहीं जा सकता था, दादा के ज्ञान से यह इतना सरल हो गया है। बल्कि दादा के ज्ञान के बारे में ऐसा कहना चाहिए कि 'धन्य भाग्य! मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ और दादा मिले।'

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं रहता। अब ऐसा लगता है, कि 'हम कितने अभागे हैं कि ऐसे दादा मिले हैं फिर भी काम निकालना नहीं आता।'

दादाश्री : हं, दादा मिले हैं तो काम निकाल लेना। फिर कहीं ये तो देखने को भी नहीं मिलेंगे। नहीं चलाओगे न, तो यह जो नुकसान है वह खत्म हो जाएगा, अपने आप ही खत्म हो जाएगा। लेकिन आपने दादा की अनुपस्थिति में, उनकी आज्ञा का पालन किया तो आपका काम ही निकल जाएगा। उसके बारे में सोचना ही मत। यह नहीं देखना है कि नुकसान कितना है, आपको तो बस, किस तरह से आज्ञा पालन करें और यह कि हम आज्ञा भूलें नहीं, इतना ही देखना है। इसमें क्या नुकसान है भला?

अपमान करता है मूर्त का, 'मैं अमूर्त हूँ'

प्रश्नकर्ता : दादा, अपने अंदर जो शुद्धात्मा की प्रतीति हो गई है, जो *लक्ष* बैठ गया है, उसे मज़बूत करने के लिए आत्मा के गुणों को समझना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, अपना कोई अपमान करे तो?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें मेरा अपमान करने वाला तो कोई है ही नहीं।

दादाश्री : ये लोग जिसका अपमान करते हैं वे किसका अपमान करते हैं? ये तो जो दिखाई देता है उसका अपमान करते हैं और मैं तो वह नहीं हूँ, मेरा अपमान कैसे हो सकता है? 'मैं अमूर्त हूँ।'

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : कोई कहे, आप चंदूभाई के तौर पर करते हो यह सब और आप खाते हो, पीते हो और तब आपको मन में नहीं, प्रज्ञा से समझना है कि यह सब तो मुझे उदयकर्म के आधार पर करना पड़ता है। मुझे नहीं करना है फिर भी करना पड़ता है। अब उसका रक्षण तो करना ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं करना है।

दादाश्री : उसका कोई अपमान करे तो आपको समझना है कि, 'मैं अमूर्त हूँ।'

अमूर्त के ध्यान से शुक्लध्यान

आत्मा के ये गुण तो आपको स्वतंत्र रूप

से बोलने के लिए दिए हैं। 'मैं अमूर्त हूँ।' मन-वचन-काया मूर्त स्वरूपी है, मैं अमूर्त हूँ। इस संसार की सर्व जंजालें मूर्त स्वरूपी हैं, मैं अमूर्त हूँ। धर्म-अधर्म मूर्त स्वरूपी है, मैं अमूर्त हूँ। ये लोग अपमान करते हैं तो वे किसका अपमान करते हैं? जो दिखाई देता है उसका। मेरा अपमान किस प्रकार से हो सकता है? 'मैं अमूर्त हूँ।' यह गुण का आराधन, वही अमूर्त का आराधन है और उसका ध्यान करने से, उसका मनन करने से ज्ञान उत्पन्न होता है। यह तो मनन है, इसमें से ध्यान उत्पन्न होता है। ध्यान सीधे नहीं हो जाता। सीधे ही ध्यान नहीं किया जा सकता। किसी चीज़ का मनन करते हैं तो उसमें से ध्यान उत्पन्न होता है। तो कहते हैं, 'कुछ ध्यान नहीं हो पाता।' अरे, तुझे अब किस चीज़ का ध्यान करना है?

प्रश्नकर्ता : अमूर्त हूँ, ऐसा अमूर्त का ध्यान किस प्रकार से हो सकता है? वह वस्तु तो मन-वचन-काया से परे है।

दादाश्री : नहीं, उसी को ध्यान कहा जाता है। यही वह ध्यान है, अमूर्त का ध्यान तो दिन भर आपके भीतर चलता ही रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा वहाँ जाते समय आपके ध्यान में था या नहीं?

प्रश्नकर्ता : था।

दादाश्री : वह शुक्लध्यान है, वह अमूर्त का ध्यान है।

आत्मा की अनंत शक्ति से हल

प्रश्नकर्ता : अक्रम विज्ञान के बिना नहीं हो सकता यह।

दादाश्री : नहीं, नहीं हो सकता ऐसा, ठीक है! 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' कह देना।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : यदि विचार आए... तो कोई भी विचार महत्वपूर्ण नहीं होता। जब तक वह विचार अपने आप चले, तब तक चलने देना। नहीं चले और वापस चला जाए, तो वापस भेज देना। उसी अनुसार होता है व्यवस्थित। जो हो रहा है, वही करेक्ट है। यानी किसी और झंझट में मत पड़ना। 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' कहा, कि बाकी सब बंद हो जाएगा। चाहे कैसा भी हो, फिर भी 'अनंत शक्ति वाला हूँ' कहा कि हल आ जाएगा। आत्मा की शक्ति अपार है!

अव्याबाध स्वरूप समझते ही सेफसाइड

वास्तव में तो ज्ञानी पुरुष ने जो आत्मा जाना है न, वह आत्मा तो ऐसा है कि किसी को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं देता। किसी को किंचित्मात्र दुःख न दे और कोई उसे किंचित्मात्र दुःख न दे सके, वास्तव में शुद्धात्मा ऐसा है। लेकिन हमें इस सत्संग में बैठ-बैठकर उस पद को पूरी तरह से समझ लेना है कि मैं अव्याबाध स्वरूप हूँ। मेरा स्वरूप अव्याबाध है।

मेरा स्वरूप ऐसा है कि किसी जीव को कभी किंचित्मात्र भी दुःख नहीं पहुँचा सकता और सामने वाले का स्वरूप भी ऐसा है कि उसे कभी भी दुःख नहीं हो सकता। उसी प्रकार सामने वाला भी हमें दुःख नहीं दे सकता, ऐसा अनुभव हो जाता है। सामने वाले को इसका अनुभव नहीं है लेकिन मुझे तो अनुभव हो गया, फिर ऐसी शंका नहीं रहती कि मुझसे दुःख पहुँचेगा। जब तक, सामने वाले को मुझसे दुःख हो रहा है, ज़रा सी भी ऐसी शंका रहती है तो उसके लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए। उस शंका का निवारण करना चाहिए। और 'अपना' स्वरूप तो वही का वही है, अव्याबाध! 'ज्ञानी पुरुष' ने जिस गद्दी

पर बिठाया है, उस गद्दी पर बैठे-बैठे काम करते रहना है!

ऐसा खुद का स्वरूप अव्याबाध है, फिर भी ऐसा मान लिया है कि 'यह मुझे हुआ।' इसे 'मैं हूँ' माना इसलिए दु:ख हुआ। जल जाता है, और कुछ हो जाता है और सब असर होता है न! अत: हम उस स्वरूप में बैठा देते हैं। फिर आपको कोई दु:ख नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : दादा, अब कोई मुश्किल बाधा नहीं डालती।

दादाश्री : तेरा स्वरूप अव्याबाध स्वरूप जैसा लगा तुझे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : किसी से दु:ख नहीं हो सकता, ऐसा स्वरूप है।

प्रश्नकर्ता : दु:ख नहीं होगा अब।

दादाश्री : सेफसाइड वाला हो गया तू। इस जगत् के लोग तुझे कितना भी अनसेफ करना चाहे लेकिन तू सेफसाइड वाला हो गया। क्योंकि इस ज्ञान को समझ गया। इस ज्ञान को समझते हैं, उन सभी को ऐसा हो गया है। किसी को कुछ भी नहीं होता। गालियाँ दें फिर भी कुछ नहीं, मारे फिर भी कुछ नहीं, लूट लें फिर भी कुछ नहीं और उसके बावजूद भी ढीठ नहीं है। ढीठ को कुछ नहीं होता। लेकिन ढीठ को कुछ नहीं होता यानी जैसे कि दुनिया द्वारा निकाल दिया गया व्यक्ति। और यह तो दुनिया में सद्विवेक वाला, कितना जाग्रत! निरंतर जाग्रत!

अपमान में ज्ञानी को बरते सनातन सुख

आत्मा में परमसुख ही है, लेकिन कलुषित भाव के कारण वह सुख आवरित हो जाता है। यह सुख कहाँ से आता है? विषयों में से? मान में से? क्रोध में से? लोभ में से? इन किसी में से नहीं आए तो समझना कि यह समकित है।

'आई' (मैं) में इन्टरेस्ट आए तो निरा सुख ही है। सुख का धाम है, परम सुख का धाम है! अनंत सुख का धाम है, जिस सुख आने के बाद कभी भी वापस दु:ख आए ही नहीं। फाँसी पर चढ़ाए तब भी नहीं। फाँसी पर चढ़ाए तो फाँसी पर चढ़ने वाला चढ़ता है, जानने वाला जानता है। *पुद्गल* फाँसी पर चढ़ता है, आत्मा कभी भी फाँसी पर नहीं चढ़ता। इस अंबालाल को आप गालियाँ दो, मारपीट करो तब भी मुझे असर नहीं होता। क्योंकि दोनों बिल्कुल अलग रहते हैं। फाँसी पर चढ़ाओ तो भी मुझे हर्ज नहीं है। मेरी इच्छा नहीं है लेकिन फिर भी आप सभी चढ़ाओ तो उसमें आपत्ति नहीं है। क्योंकि मुझे पड़ोसी के तौर पर इतना तो रखना ही पड़ेगा कि मेरी इच्छा नहीं होनी चाहिए। उन्होंने मेरे लिए चक्कर लगाए हैं, मेरा काम किया है। इतना उपकार तो मुझे मानना पड़ेगा न! पड़ोसी के तौर पर रहते हैं ये। तो आप चंदूभाई के साथ पड़ोसी की तरह रहोगे तब वहाँ पर सनातन अनुभूति होगी।

जितना उल्टा चले उतना 'इगोइज़म' (अहंकार) बढ़ता है और जितना 'इगोइज़म' विलय हो उतना सुख बरतता रहता है। हमारा इगोइज़म खत्म हो गया है, इसलिए निरंतर सनातन सुख रहता है। दु:ख में भी सुख रहे, वह सच्चा सुख है। कोई अपमान करे तब भी खुद को भीतर सुख लगता है, तब ऐसा होता है कि, 'अहोहो, यह कैसा सुख!'

अपमान पचाए, वह ज्ञानी हो जाए

हमें छब्बीस साल से टेन्शन नहीं हुआ है, एक सेकन्ड भी। कोई गालियाँ दे, मारे, जेल

में ले जाए, फिर भी हमें टेन्शन नहीं होगा। और वह शक्ति आप में भी है। आपको सिर्फ शक्ति को विकसित करने की ज़रूरत है। जो सामान मुझ में है, वही सामान आप में भी है।

यह ज्ञान ही मोक्ष में ले जाए ऐसा है। लेकिन आपकी जागृति से बहुत हेल्प करनी चाहिए इसे, पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुष हो जाने के बाद पुरुषार्थ होता है। प्रकृति और पुरुष दोनों अलग हो गए। जब तक आप 'चंदूभाई' थे, तब तक प्रकृति थी तो जैसे प्रकृति नचाए वैसे आप नाचते थे। आप पुरुष हो गए और प्रकृति अलग हो गई। पुरुष हो जाने के बाद पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। पुरुषार्थ में वह जागृति तो है ही। पुरुषार्थ में तो सिर्फ और क्या है? हमें तय करना चाहिए। स्थिरतापूर्वक सारी बातचीत करनी चाहिए।

आप शुद्धात्मा हो और यह है चंदूभाई। अब आपको चंदूभाई की देख-रेख करनी है, पड़ोसी की तरह और चंदूभाई को यदि कोई परेशानी आ जाए तो आप चंदूभाई का कंधा थपथपाकर कहना। 'पहले एक थे, अब वे दो हो गए हैं'। पहले तो किसी का सहारा ही नहीं था। अपनी तरह से खुद ही खुद का सहारा ढूँढते रहते थे। अब एक से दो हो गए हैं। ऐसा कभी किया था या नहीं किया?

प्रश्नकर्ता : किया है।

दादाश्री : उस समय हमें कुछ अलग ही तरह का लगता है न? जैसे पूरे ब्रह्मांड के राजा हों न, हमें उस तरह से बोलना है। यह सब, मेरे अनुभव की सारी बातें आपको दिखा दीं। जगत् की 'मार' खाना, उसमें आत्मा का स्वाद है। देने में स्वाद नहीं है। देने से ही तो यह खड़ा हुआ है! ज्ञान प्राप्ति के बाद जिन्हें अपमान पचाना आ जाए, तो वे 'ज्ञानी' हो जाएँगे।

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में सत्संग कार्यक्रम

मुंबई

12-13 जनवरी (शुक्र-शनि) शाम 6 से 9 - **सत्संग** और **14 जनवरी** (रवि) शाम 5-30 से 9 - **ज्ञानविधि**
स्थल : जमनाबाई नरसी स्कूल ग्राउन्ड़, ओप्शंस मोल के सामने, JVPD स्कीम, विले पार्ले (वेस्ट) मुंबई.
संपर्क : 9323528901

भावनगर त्रिमंदिर प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में... दिनांक 16 से 18 फरवरी 2024

16 फरवरी (शुक्र) - **सत्संग** और **17 फरवरी** (शनि) - **ज्ञानविधि** (नए मुमुक्षुओं के लिए)
18 फरवरी (रवि) - **प्राणप्रतिष्ठा** तथा **प्रक्षाल-पूजन-दर्शन-आरती**
विशेष सूचना : प्राणप्रतिष्ठा कार्यक्रम केवल एक दिन का है, इसलिए रात्रि आवास की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाएगी. जो महात्मा-मुमुक्षु उसी दिन सीधे ही महोत्सव स्थल पर पहुँचेंगे, उनके लिए बाथरूम-टोइलेट की सुविधा स्थल पर रहेगी.

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

पूज्य नीरूमाँ / पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल पर...

भारत

- 'दूरदर्शन गिरनार' पर रोज सुबह 7-30 से 8-30, रात 9 से 10
- 'प्रवेग टीवी' चैनल पर हर रोज दोपहर 3-30 से 4 **(नया कार्यक्रम)**
- 'धर्म संदेश' चैनल पर हर रोज सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3, रात 8 से 9
- 'वालम' पर हर रोज शाम 6 से 6-30 **(सिर्फ गुजरात राज्य में)**
- 'साधना गोल्ड गुजराती' पर हर रोज सुबह 7 से 8 तथा रात 8 से 9
- 'साधना' पर हर रोज सुबह 7-50 से 8-15 तथा रात 9-30 से 9-55 **(हिन्दी में)**
- 'दूरदर्शन सह्याद्रि' पर हर रोज सुबह 7 से 7-45, सोम से शुक्र दोपहर 3-30 से 4 तथा शनि-रवि दोपहर 11-30 से 12 **(मराठी में)**
- 'आस्था हिन्दी' पर हर रोज रात 10 से 10-20
- 'दूरदर्शन उत्तरप्रदेश' पर हर रोज दोपहर 3 से 4 **(हिन्दी में)**
- 'आस्था कन्नड़ा' पर हर रोज दोपहर 12 से 12-30 तथा शाम 4-30 से 5 **(कन्नड़ा में)**
- 'दूरदर्शन चंदना' पर हर रोज शाम 6-30 से 7

USA - Canada

- 'TV Asia'- पर हर रोज सुबह 7-30 से 8 EST

U K

- **'MA TV'** पर हर रोज शाम 5-30 से 6-30 GMT

Australia

- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 8 से 8-30 तथा दोपहर 1-30 से 2 (हिन्दी में)

Fiji - NZ - Singapore - SA - UAE

- **'Rishtey-Asia'** पर हर रोज सुबह 6 से 6-30 तथा 7-30 से 8 (हिन्दी में)

USA - UK - Africa - Australia

- 'आस्था ग्लोबल' पर सोम से शुक्र रात 10 से 10-30 (डीश टीवी चेनल UK-849, USA-719) **(गुजराती और हिन्दी में)**

दिसम्बर 2023
वर्ष-19 अंक-2
अखंड क्रमांक - 218

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
LPWP Licence No. PMG/NG/036/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

डिस्चार्ज मान के सामने ज्ञानजागृति

अब, ज्ञान लेने के बाद भी यह जो मान की *लागणी* का अनुभव होता है न, उसे देखना है, वह डिस्चार्ज है और अभी डिस्चार्ज में राग-द्वेष हैं, वह तो अज्ञान का परिणाम है। उसमें 'आपको' राग-द्वेष नहीं होते, वह आत्मा प्राप्ति का परिणाम है। अब, वह डिस्चार्ज है, वह निकलता रहेगा। इसलिए आप ऐसा कभी भी कह सकते हो, 'चंदूभाई, बहुत रौब मार रहे हो? अच्छे मज़े हैं आपको तो! कुछ हर्ज नहीं लेकिन अब ज़रा वापस राह पर आ जाओ'। उसमें हर्ज नहीं है, वह डिस्चार्ज परिणाम है। इसे आचरण में आने में देर लगेगी। राग-द्वेष चले गए हैं तब सौ प्रतिशत आत्मा हो गया ऐसा कहा जाएगा। यह जो मान उत्पन्न होता है उसे देखना है, उसे ज्ञान कहते हैं। फिर चाहे एक अंश मान हो या पचास अंश मान हो लेकिन जो अज्ञान को देखते हैं, वे ज्ञानी हैं। मान वाला वह अज्ञान है, ऐसा आपको पता चलता है न? उस अज्ञान को देखते हो इसलिए आप ज्ञानी हो।

– दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner.
Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road,
At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.